.. Dnyaneshvari or Bhavarthadipika Chapter 12 ..
॥ ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय १२ ॥

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥
अध्याय बारावा ।
भक्तियोगः ।

जय जय वो शुद्धे। उदारे प्रसिद्धे। अनवरत आनंदे। वर्षतिये ॥ १॥
विषयव्याळें मिठी। दिधलिया नुठी ताठी। ते तुझिये गुरुकृपादृष्टी। निर्विष होय ॥ २॥
तरी कवणातें तापु पोळी। कैसेनि वो शोकु जाळी। जरी प्रसादरसकल्लोळीं। पुरें येसि तूं ॥ ३॥
योगसुखाचे सोहळे। सेवकां तुझेनि स्नेहाळे। सोऽहंसिद्धीचे लळे। पाळिसी तूं ॥ ४॥
आधारशक्तीचिया अंकीं। वाढविसी कौतुकीं। हृदयाकाशपल्लकीं। परीये देसी निजे ॥ ५॥
प्रत्यक्ज्योतीची वोवाळणी। करिसी मनपवनाचीं खेळणीं। आत्मसुखाची बाळलेणीं। लेवविसी ॥ ६॥
सतरावियेचें स्तन्य देसी। अनुहताचा हल्लरू गासी। समाधिबोधें निजविसी। बुझाऊनि ॥ ७॥
म्हणौनि साधकां तूं माउली। पिके सारस्वत तुझिया पाउलीं। या कारणें मी साउली। न संडीं तुझी ॥ ८॥
अहो सद्गुरुचिये कृपादृष्टी। तुझें कारुण्य जयातें अधिष्ठी। तो सकलविद्यांचिये सृष्टीं। धात्रा होय ॥ ९॥
म्हणौनि अंबे श्रीमंते। निजजनकल्पलते। आज्ञापीं मातें। ग्रंथनिरूपणीं ॥ १०॥
नवरसीं भरवीं सागरु। करवीं उचित रत्नांचे आगरु। भावार्थाचे गिरिवरु। निफजवीं माये ॥ ११॥
साहित्यसोनियाचिया खाणी। उघडवीं देशियेचिया क्षोणीं। विवेकवल्लीची लावणी। हों देई सैंघ ॥ १२॥
संवादफळनिधानें। प्रमेयाचीं उद्यानें। लावीं म्हणे गहनें। निरंतर ॥ १३॥
पाखांडाचे दरकुटे। मोडीं वाग्वाद अव्हांटे। कुतर्कांचीं दुष्टें। सावजें फेडीं ॥ १४॥
श्रीकृष्णगुणीं मातें। सर्वत्र करीं वो सरतें। राणिवे बैसवी श्रोते। श्रवणाचिये ॥ १५॥
ये मऱ्हाठियेचिया नगरीं। ब्रह्मविद्येचा सुकाळु करीं। घेणें देणें सुखचिवरी। हों देई या जगा ॥ १६॥
तूं आपुलेनि स्नेहपल्लवें। मातें पांघुरविशील सदैवें। तरी आतांचि हें आघवें। निर्मीन माये ॥ १७॥
इये विनवणीयेसाठीं। अवलोकिलें गुरु कृपादृष्टीं। म्हणे गीतार्थेंसी उठी। न बोलें बहु ॥ १८॥
तेथ जी जी महाप्रसादु। म्हणौनि साविया जाहला आनन्दु। आतां निरोपीन प्रबंधु। अवधान दीजे ॥ १९॥

अर्जुन उवाच ।
एवं सतत युक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १॥

तरी सकलवीराधिराजु। जो सोमवंशीं विजयध्वजु। तो बोलता जाहला आत्मजु। पंडुनृपाचा ॥ २०॥
कृष्णातें म्हणे अवधारिलें। आपण विश्वरूप मज दाविलें। तें नवल म्हणौनि बिहालें। चित्त माझें ॥ २१॥
आणि इये कृष्णमूर्तीची सवे। यालागीं सोय धरिली जीवें। तंव नको म्हणोनि देवें। वारिलें मातें ॥ २२॥
तरी व्यक्त आणि अव्यक्त। हें तूंचि एक निभ्रांत। भक्ती पाविजे व्यक्त। अव्यक्त योगें ॥ २३॥

या दोनी जी वाटा। तूंतें पावावया वैकुंठा। व्यक्ताव्यक्त दारवंठां। रिगिजे येथ ॥ २४ ॥
पैं जे वानी श्यातुका। तेचि वेगळिये वाला येका। म्हणौनि एकदेशिया व्यापका। सरिसा पाडू ॥ २५ ॥
अमृताचिया सागरीं। जे लाभे सामर्थ्याची थोरी। तेचि दे अमृतलहरी। चुळीं घेतलेया ॥ २६ ॥
हे कीर माझ्या चित्तीं। प्रतीति आथि जी निरुती। परि पुसणें योगपती। तें याचिलागीं ॥ २७ ॥
जें देवा तुम्हीं नावेक। अंगिकारिलें व्यापक। तें साच कीं कवतिक। हें जाणावया ॥ २८ ॥
तरी तुजलागीं कर्म। तूंचि जयांचें परम। भक्तीसी मनोधर्म। विकोनि घातला ॥ २९ ॥
इत्यादि सर्वीं परीं। जे भक्त तूंतें श्रीहरी। बांधोनियां जिव्हारीं। उपासिती ॥ ३० ॥
आणि जें प्रणवापैलीकडे। वैखरीयेसी जें कानडें। कायिसयाहि सांगडें। नव्हेचि जें वस्तु ॥ ३१ ॥
तें अक्षर जी अव्यक्त। निर्देश देशरहित। सोऽहंभावें उपासित। ज्ञानिये जे ॥ ३२ ॥
तयां आणि जी भक्तां। येरयेरांमाजी अनंता। कवणें योगु तत्त्वतां। जाणितला सांगा ॥ ३३ ॥
इया किरीटीचिया बोला। तो जगद्‌बंधु संतोषला। म्हणे हो प्रश्नु भला। जाणसी करूं ॥ ३४ ॥

श्री भगवानुवाच ।
मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥

तरी अस्तुगिरीचियां उपकंठीं। रिगालिया रविबिंबापाठीं। रश्मी जैसे किरीटी। संचरती ॥ ३५ ॥
कां वर्षाकाळीं सरिता। जैसी चढों लागें पांडुसुता। तैसी नीच नवी भजतां। श्रद्धा दिसे ॥ ३६ ॥
परी ठाकिलियाहि सागरु। जैसा मागीलही यावा अनिवारु। तिये गंगेचिये ऐसा पडिभरु। प्रेमभावा ॥ ३७ ॥
तैसें सर्वेंद्रियांसहित। मजमाजीं सूनि चित्त। जे रात्रिदिवस न म्हणत। उपासिती ॥ ३८ ॥
इयापरी जे भक्त। आपणपें मज देत। तेचि मी योगयुक्त। परम मानीं ॥ ३९ ॥

ये त्वक्षर्मनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवं ॥ ३ ॥

आणि येर तेही पांडवा। जे आरूढोनि सोऽहंभावा। झोंबती निरवयवा। अक्षरासी ॥ ४० ॥
मनाची नखी न लगे। जेथ बुद्धीची दृष्टी न रिगे। ते इंद्रियां कीर जोगें। कायि होईल ? ॥ ४१ ॥
परी ध्यानाही कुवाडें। म्हणौनि एके ठायीं न संपडे। व्यक्तीसि माजिवडें। कवणेही नोहे ॥ ४२ ॥
जया सर्वत्र सर्वपणें। सर्वांही काळीं असणें। जें पावूनि चिंतवणें। हिंपुटी जाहलें ॥ ४३ ॥
जें होय ना नोहे। जें नाहीं ना आहे। ऐसें म्हणौनि उपाये। उपजतीचि ना ॥ ४४ ॥
जें चळे ना ढळे। सरे ना मैळे। तें आपुलेनीचि बळें। आंगविलें जिहीं ॥ ४५ ॥

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥

पैं वैराग्यमहापावकें। जाळूनि विषयांचीं कटकें। अधपलीं तवकें। इंद्रियें धरिलीं ॥ ४६ ॥

मग संयमाची धाटी। सूनि मुरडिलीं उफराटीं। इंद्रियें कोंडिलीं कपाटीं। हृदयाचिया ॥ ४७॥
अपानींचिया कवाडा। लावोनि आसनमुद्रा सुहाडा। मूळबंधाचा हुडा। पन्नासिला ॥ ४८॥
आशेचे लाग तोडिले। अधैर्याचे कडे झाडिले। निद्रेचें शोधिलें। काळवखें ॥ ४९॥
वज्राग्नीचिया ज्वाळीं। करूनि सप्तधातूंची होळी। व्याधींच्या सिसाळीं। पूजिलीं यंत्रें ॥ ५०॥
मग कुंडलिनियेचा टेंभा। आधारीं केला उभा। तया चोजवलें प्रभा। निमथावरी ॥ ५१॥
नवद्वारांचिया चौचकीं। बाणूनि संयतीची आडवंकी। उघडिली खिडकी। ककारांतींची ॥ ५२॥
प्राणशक्तिचामुंडे। प्रहारूनि संकल्पमेंढे। मनोमहिषाचेनि मुंडें। दिधलीं बळी ॥ ५३॥
चंद्रसूर्यां बुझावणी। करूनि अनुहताची सुडावणी। सतरावियेचें पाणी। जिंतिलें वेगीं ॥ ५४॥
मग मध्यमा मध्य विवरें। तेणें कोरिवें दादरें। ठाकिलें चवरें। ब्रह्मरंध्र ॥ ५५॥
वरी मकारांत सोपान। ते सांडोनिया गहन। काखे सूनियां गगन। भरले ब्रह्मीं ॥ ५६॥
ऐसे जे समबुद्धी। गिळावया सोऽहंसिद्धी। आंगविताती निरवधी। योगदुर्गें ॥ ५७॥
आपुलिया साटोवाटी। शून्य घेती उठाउठीं। तेही मातेंचि किरीटी। पावती गा ॥ ५८॥
वांचूनि योगचेनि बळें। अधिक कांहीं मिळे। ऐसें नाहीं आगळें। कष्टचि तया ॥ ५९॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५॥

जिहीं सकळ भूतांचिया हितीं। निरालंबीं अव्यक्तीं। पसरलिया आसक्ती। भक्तीवीण ॥ ६०॥
तयां महेन्द्रादि पदें। करिताति वाटवधें। आणि ऋद्धिसिद्धींचीं द्वंद्वें। पाडोनि ठाती ॥ ६१॥
कामक्रोधांचे विलग। उठावती अनेग। आणि शून्येंसीं आंग। झुंजवावें कीं ॥ ६२॥
ताहानें ताहानचि पियावी। भुकेलिया भूकचि खावी। अहोरात्र वावीं। मवावा वारा ॥ ६३॥
उनी दिहाचें पहुडणें। निरोधाचें वेल्हावणें। झाडासि साजणें। चाळावें गा ॥ ६४॥
शीत वेढावें। उष्ण पांघुरावें। वृष्टीचिया असावें। घरांआंतु ॥ ६५॥
किंबहुना पांडवा। हा अग्निप्रवेशु नीच नवा। भातारेंवीण करावा। तो हा योगु ॥ ६६॥
एथ स्वामीचें काज। ना वापिकें व्याज। परी मरणेंसीं झुंज। नीच नवें ॥ ६७॥
ऐसें मृत्यूहूनि तीख। कां घोंटे कढत विख। डोंगर गिळितां मुख। न फाटे काई ? ॥ ६८॥
म्हणौनि योगाचियां वाटा। जे निगाले गा सुभटा। तयां दुःखाचाचि शेलवांटा। भागा आला ॥ ६९॥
पाहें पां लोहाचे चणे। जैं बोचरिया पडती खाणें। तैं पोट भरणें कीं प्राणें। शुद्धी म्हणों ॥ ७०॥
म्हणौनि समुद्र बाहीं। तरणे आथि केंही। कां गगनामाजीं पाईं। खोलिजतु असें ? ॥ ७१॥
वळघलिया रणाची थाटी। आंगीं न लागतां कांठी। सूर्याची पाउटी। कां होय गा ॥ ७२॥
यालागीं पांगुळा हेवा। नव्हे वायूसि पांडवा। तेवीं देहवंता जीवां। अव्यक्तीं गति ॥ ७३॥
ऐसाही जरी धिंवसा। बांधोनियां आकाशा। झोंबती तरी क्लेशा। पात्र होती ॥ ७४॥
म्हणौनि येर ते पार्था। नेणतीचि हे व्यथा। जे कां भक्तिपंथा। वोटंगले ॥ ७५॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।

अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६॥

कर्मेंद्रियें सुखें। करिती कर्में अशेखें। जियें कां वर्णविशेखें। भागा आलीं ॥ ७६॥
विधीतें पाळित। निषेधातें गाळित। मज देऊनि जाळित। कर्मफळें ॥ ७७॥
ययापरी पाहीं। अर्जुना माझें ठाईं। संन्यासूनि नाहीं। करिती कर्में ॥ ७८॥
आणीकही जे जे सर्व। कायिक वाचिक मानसिक भाव। तयां मीवांचूनि धांव। आनौती नाहीं ॥ ७९॥
ऐसे जे मत्पर। उपासिती निरंतर। ध्यानमिषें घर। माझें झालें ॥ ८०॥
जयांचिये आवडी। केली मजशीं कुळवाडी। भोग मोक्ष बापुडीं। त्यजिलीं कुळें ॥ ८१॥
ऐसे अनन्ययोगें। विकले जीवें मनें आंगें। तयांचे कायि एक सांगें। जें सर्व मी करीं ॥ ८२॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७॥

किंबहुना धनुर्धरा। जो मातेचिया ये उदरा। तो मातेचा सोयरा। केतुला पां ॥ ८३॥
तेवीं मी तयां। जैसे असती तैसियां। कळिकाळ नोकोनियां। घेतला पट्टा ॥ ८४॥
एऱ्हवीं तरी माझियां भक्तां। आणि संसाराची चिंता। काय समर्थाची कांता। कोरान्न मागे ॥ ८५॥
तैसे ते माझें। कलत्र हें जाणिजे। कायिसेनिही न लजें। तयांचेनि मी ॥ ८६॥
जन्ममृत्यूचिया लाटीं। झळंबती इया सृष्टी। तें देखोनियां पोटीं। ऐसें जाहलें ॥ ८७॥
भवसिंधूचेनि माजें। कवणासि धाकु नुपजे। तेथ जरी कीं माझे। बिहिती हन ॥ ८८॥
म्हणौनि गा पांडवा। मूर्तीचा मेळावा। करूनि त्यांचिया गांवा। धांवतु आलों ॥ ८९॥
नामाचिया सहस्रवरी। नावा इया अवधारीं। सजूनियां संसारीं। तारू जाहलों ॥ ९०॥
सडे जे देखिले। ते ध्यानकासे लाविले। परीग्रहीं घातले। तरियावरी ॥ ९१॥
प्रेमाची पेटी। बांधली एकाचिया पोटीं। मग आणिले तटीं। सायुज्याचिया ॥ ९२॥
परी भक्तांचेनि नांवें। चतुष्पदादि आघवे। वैकुंठींचिये राणिवे। योग्य केले ॥ ९३॥
म्हणौनि गा भक्तां। नाहीं एकही चिंता। तयांतें समुद्धर्ता। आथि मी सदा ॥ ९४॥
आणि जेव्हांचि कां भक्तीं। दीधली आपुली चित्तवृत्ती। तेव्हांचि मज सूति। त्यांचिये नाटीं ॥ ९५॥
याकारणें गा भक्तराया। हा मंत्र तुवां धनंजया। शिकिजे जे यया। मार्गा भजिजे ॥ ९६॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत उर्ध्वं न संशयः ॥ ८॥

अगा मानस हें एक। माझ्या स्वरूपीं वृत्तिक। करूनि घालीं निष्टंक। बुद्धि निश्चयेंसीं ॥ ९७॥
इयें दोनीं सरिसीं। मजमाजीं प्रेमेसीं। रिगालीं तरी पावसी। मातें तूं गा ॥ ९८॥
जे मन बुद्धि इहीं। घर केलें माझ्यां ठायीं। तरी सांगें मग काइ। मी तू ऐसें उरे ? ॥ ९९॥
म्हणौनि दीप पालवे। सवेंचि तेज मालवे। कां रविबिंबासवें। प्रकाशु जाय ॥ १००॥
उचललेया प्राणासरिसीं। इंद्रियेंही निगती जैसीं। तैसा मनोबुद्धिपाशीं। अहंकारु ये ॥ १०१॥

म्हणौनि माझिया स्वरूपीं। मनबुद्धि इयें निक्षेपीं। येतुलेनि सर्वव्यापी। मीचि होसी ॥ १०२॥
यया बोला कांहीं। अनारिसें नाहीं। आपली आण पाहीं। वाह्तु असें गा ॥ १०३॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनन्जय ॥ ९॥

अथवा हें चित्त। मनबुद्धिसहित। माझ्यां हातीं अचुंबित। न शकसी देवों ॥ १०४॥
तरी गा ऐसें करीं। यया आठां पाहारांमाझारीं। मोटकें निमिषभरी। देतु जाय ॥ १०५॥
मग जें जें कां निमिख। देखेल माझें सुख। तेतुलें अरोचक। विषयीं घेईल ॥ १०६॥
जैसा शरत्कालु रिगे। आणि सरिता वोहटूं लागे। तैसें चित्त काढेल वेगें। प्रपंचौनि ॥ १०७॥
मग पुनवेहूनि जैसें। शशिबिंब दिसेंदिसें। हारपत अंवसे। नाहींचि होय ॥ १०८॥
तैसें भोगाआंतूनि निगतां। चित्त मजमाजीं रिगतां। हळूहळू पंडुसुता। मीचि होईल ॥ १०९॥
अगा अभ्यासयोगु म्हणिजे। तो हा एकु जाणिजे। येणें कांहीं न निपजे। ऐसें नाहीं ॥ ११०॥
पैं अभ्यासाचेनि बळें। एकां गति अंतराळें। व्याघ्र सर्प प्रांजळे। केले एकीं ॥ १११॥
विष कीं आहारीं पडे। समुद्रीं पायवाट जोडे। एकीं वाग्ब्रह्म थोकडें। अभ्यासें केलें ॥ ११२॥
म्हणौनि अभ्यासासी कांहीं। सर्वथा दुष्कर नाहीं। यालागी माझ्या ठायीं। अभ्यासें मीळ ॥ ११३॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १०॥

कां अभ्यासाही लागीं। कसु नाहीं तुझिया अंगीं। तरी आहासी जया भागीं। तैसाचि आस ॥ ११४॥
इंद्रियें न कोंडीं। भोगातें न तोडीं। अभिमानु न संडीं। स्वजातीचा ॥ ११५॥
कुळधर्मु चाळीं। विधिनिषेध पाळीं। मग सुखें तुज सरळी। दिधली आहे ॥ ११६॥
परी मनें वाचा देहें। जैसा जो व्यापारु होये। तो मी करीतु आहें। ऐसें न म्हणें ॥ ११७॥
करणें कां न करणें। हें आघवें तोचि जाणे। विश्व चळतसे जेणें। परमात्मेनि ॥ ११८॥
उणयापुरेयाचें कांहीं। उरों नेदी आपुलिया ठायीं। स्वजाती करूनि घेईं। जीवित्व हें ॥ ११९॥
माळियें जेउतें नेलें। तेउतें निवांतचि गेलें। तया पाणिया ऐसें केलें। होआवें गा ॥ १२०॥
म्हणौनि प्रवृत्ति आणि निवृत्ती। इयें वोझीं नेघे मती। अखंड चित्तवृत्ती। माझ्या ठायीं ॥ १२१॥
एऱ्हवीं तरी सुभटा। उजू कां अव्हाटां। रथु काई खटपटा। करितु असे ? ॥ १२२॥
आणि जें जें कर्म निपजे। तें थोडें बहु न म्हणिजे। निवांतचि अर्पिजे। माझ्यां ठायीं ॥ १२३॥
ऐसिया मद्भावना। तनुत्यागीं अर्जुना। तूं सायुज्य सदना। माझिया येसी ॥ १२४॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११॥

ना तरी हेंही तूज। नेदवे कर्म मज। तरी तूं गा बुझ। पंडुकुमरा ॥ १२५॥

बुद्धीचिये पाठीं पोटीं। कर्माआदि कां शेवटीं। मातें बांधणें किरीटी। दुवाड जरी ॥ १२६ ॥
तरी हेंही असो। सांडीं माझा अतिसो। परि संयतिसीं वसो। बुद्धि तुझी ॥ १२७ ॥
आणि जेणें जेणें वेळें। घडती कर्मै सकळें। तयांचीं तियें फळें। त्यजितु जाय ॥ १२८ ॥
वृक्ष कां वेली। लोटती फळें आलीं। तैसीं सांडीं निपजलीं। कर्मै सिद्धें ॥ १२९ ॥
परि मातें मनीं धरावें। कां मजउद्देशें करावें। हें कांहीं नको आघवें। जाऊं दे शून्यीं ॥ १३० ॥
खडकीं जैसें वर्षलें। कां आगीमाजीं पेरिलें। कर्म मानी देखिलें। स्वप्न जैसें ॥ १३१ ॥
अगा आत्मजेच्या विषीं। जीवु जैसा निरभिलाषी। तैसा कर्मीं अशेषीं। निष्कामु होई ॥ १३२ ॥
वन्हीची ज्वाळा जैसी। वायां जाय आकाशीं। क्रिया जिरों दे तैसी। शून्यामाजी ॥ १३३ ॥
अर्जुना हा फलत्यागु। आवडे कीर असलगु। परी योगामाजीं योगु। धुरेचा हा ॥ १३४ ॥
येणें फलत्यागें सांडे। तें तें कर्म न विरूढे। एकचि वेळे वेळुझाडें। वांझें जैसीं ॥ १३५ ॥
तैसें येणेंचि शरीरें। शरीरा येणें सरे। किंबहुना येरझारे। चिरा पडे ॥ १३६ ॥
पैं अभ्यासाचिया पाउटीं। ठाकिजे ज्ञान किरीटी। ज्ञानें येइजे भेटी। ध्यानाचिये ॥ १३७ ॥
मग ध्यानासि खेंव। देती आघवेचि भाव। तेव्हां कर्मजात सर्व। दूरी ठाके ॥ १३८ ॥
कर्म जेथ दुरावे। तेथ फलत्यागु संभवे। त्यागास्तव आंगवे। शांति सगळी ॥ १३९ ॥
म्हणौनि यावया शांति। हाचि अनुक्रमु सुभद्रापती। म्हणौनि अभ्यासुचि प्रस्तुतीं। करणें एथ ॥ १४० ॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात् कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिनिरन्तरम् ॥ १२ ॥

अभ्यासाहूनि गहन। पार्था मग ज्ञान। ज्ञानापासोनि ध्यान। विशेषिजे ॥ १४१ ॥
मग कर्मफलत्यागु। तो ध्यानापासोनि चांगु। त्यागाहूनि भोगु। शांतिसुखाचा ॥ १४२ ॥
ऐसिया या वाटा। इहींचि पेणा सुभटा। शांतीचा माजिवटा। ठाकिला जेणें ॥ १४३ ॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥

जो सर्व भूतांच्या ठायीं। द्वेषांतें नेणेंचि कहीं। आपपरु नाहीं। चैतन्या जैसा ॥ १४४ ॥
उत्तमातें धरिजे। अधमातें अव्हेरिजे। हें काहींचि नेणिजे। वसुधा जेवीं ॥ १४५ ॥
कां रायाचें देह चाळूं। रंकातें परौतें गाळूं। हें न म्हेचि कृपाळू। प्राणु पैं गा ॥ १४६ ॥
गाईची तृषा हरूं। कां व्याघ्रा विष होऊनि मारूं। ऐसें नेणेंचि गा करूं। तोय जैसें ॥ १४७ ॥
तैसी आघवियांचि भूतमात्रीं। एकपणें जया मैत्री। कृपेशीं धात्री। आपणचि जो ॥ १४८ ॥
आणि मी हे भाष नेणें। माझें काहींचि न म्हणे। सुख दुःख जाणणें। नाहीं जया ॥ १४९ ॥
तेवींचि क्षमेलागीं। पृथ्वीसि पवाडु आंगीं। संतोषा उत्संगीं। दिधलें घर ॥ १५० ॥

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

वार्षियेवीण सागरू। जैसा जळें नित्य निर्भरु। तैसा निरुपचारु। संतोषी जो ॥१५१॥
वाहूनि आपुली आण। धरी जो अंतःकरण। निश्चया साचपण। जयाचेनि ॥१५२॥
जीवु परमात्मा दोन्ही। बैसऊनि ऐक्यासनीं। जयाचिया हृदयभुवनीं। विराजती ॥१५३॥
ऐसा योगसमृद्धि। होऊनि जो निरवधि। अर्पी मनोबुद्धी। माझ्या ठायीं ॥१५४॥
आंतु बाहेरि योगु। निर्वाळलेयाहि चांगु। तरी माझा अनुरागु। सप्रेम जया ॥१५५॥
अर्जुना गा तो भक्तु। तोचि योगी तोचि मुक्तु। तो वल्लभा मी कांतु। ऐसा पढिये ॥१५६॥
हें ना तो आवडे। मज जीवाचेनि पाडें। हेंही एथ थोकडें। रूप करणें ॥१५७॥
तरी पढियंतयाची काहाणी। हे भुलीची भारणी। इयें तंव न बोलणीं। परी बोलवी श्रद्धा ॥१५८॥
म्हणौनि गा आम्हां। वेगां आली उपमा। एऱ्हवीं काय प्रेमा। अनुवादु असे ? ॥१५९॥
आतां असो हें किरीटी। पैं प्रियाचिया गोष्टी। दुणा थांव उठी। आवडी गा ॥१६०॥
तयाही वरी विपायें। प्रेमळु संवादिया होये। तिये गोडीसी आहे। कांटाळें मग ? ॥१६१॥
म्हणौनि गा पंडुसुता। तूंचि प्रियु आणि तूंचि श्रोता। वरी प्रियाची वार्ता। प्रसंगें आली ॥१६२॥
तरी आतां बोलों। भलें या सुखा मीनलों। ऐसें म्हणतखेंवीं डोलों। लागला देवो ॥१६३॥
मग म्हणे जाण। तया भक्तांचे लक्षण। जया मी अंतःकरण। बैसों घालीं ॥१६४॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

तरी सिंधूचेनि माजें। जळचरां भय नुपजे। आणि जळचरीं नुबगिजे। समुद्र जैसा ॥१६५॥
तेवीं उन्मत्तें जगें। जयासि खंती न लगे। आणि जयाचेनि आंगें। न शिणे लोकु ॥१६६॥
किंबहुना पांडवा। शरीर जैसें अवयवां। तैसा नुबगे जीवां। जीवपणें जो ॥१६७॥
जगचि देह जाहलें। म्हणौनि प्रियाप्रिय गेलें। हर्षामर्ष ठेले। दुजेनविण ॥१६८॥
ऐसा द्वंद्वनिर्मुक्तु। भयोद्वेगरहितु। याहीवरी भक्तु। माझ्यां ठायीं ॥१६९॥
तरी तयाचा गा मज मोहो। काय सांगों तो पढियावो। हें असे जीवें जीवो। माझेनि तो ॥१७०॥
जो निजानंदें धाला। परिणामु आयुष्या आला। पूर्णते जाहला। वल्लभु जो ॥१७१॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

जयाचिया ठायीं पांडवा। अपेक्षे नाहीं रिगावा। सुखासि चढावा। जयाचें असणें ॥१७२॥
मोक्ष देऊनि उदार। काशी होय कीर। परी वेचावें लागें शरीर। तिये गांवीं ॥१७३॥
हिमवंतु दोष खाये। परी जीविताची हानि होये। तैसें शुचित्व नोहे। सज्जनाचें ॥१७४॥
शुचित्वें शुचि गांग होये। आणि पापतापही जाये। परी तेथें आहे। बुडणें एक ॥१७५॥
खोलिये पारु नेणिजे। तरी भक्तीं न बुडिजे। रोकडाचि लाहिजे। न मरतां मोक्षु ॥१७६॥

संताचेनि अंगलगें। पापातें जिणणें गंगे। तेणें संतसंगें। शुचित्व कैसें ॥१७७॥
म्हणौनि असो जो ऐसा। शुचित्वें तीर्थां कुवासा। जेणें उल्लंघविलें दिशा। मनोमळ ॥१७८॥
आंतु बाहेरी चोखाळु। सूर्य जैसा निर्मळु। आणि तत्त्वार्थींचा पायाळु। देखणा जो ॥१७९॥
व्यापक आणि उदास। जैसें कां आकाश। तैसें जयाचें मानस। सर्वत्र गा ॥१८०॥
संसारव्यथे फिटला। जो नैराश्यें विनटला। व्याधाहातोनि सुटला। विहंगु जैसा ॥१८१॥
तैसा सतत जो सुखें। कोणीही टवंच न देखे। नेणिजे गतायुषें। लज्जा जेवीं ॥१८२॥
आणि कर्मारंभालागीं। जया अहंकृती नाही आंगीं। जैसें निरिंधन आगी। विझोनि जाय ॥१८३॥
तैसा उपशमुचि भागा। जयासि आला पैं गा। जो मोक्षाचिया आंगा। लिहिला असे ॥१८४॥
अर्जुना हा ठावोवरी। जो सोऽहंभावो सरोभरीं। द्वैताच्या पैलतीरीं। निगों सरला ॥१८५॥
कीं भक्तिसुखालागीं। आपणपेंचि दोहीं भागीं। वांटूनियां आंगीं। सेवकै बाणी ॥१८६॥
येरा नाम मी ठेवी। मग भजती वोज बरवी। न भजतया दावी। योगिया जो ॥१८७॥
तयाचे आम्हां व्यसन। आमुचें तो निजध्यान। किंबहुना समाधान। तो मिळे तैं ॥१८८॥
तयालागीं मज रूपा येणें। तयाचेनि मज येथें असणें। तया लोण कीजे जीवें प्राणें। ऐसा पढिये ॥१८९॥

योगो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

जो आत्मलाभासारिखें। गोमटें कांहींचि न देखे। म्हणौनि भोगविशेखें। हरिखेजेना ॥१९०॥
आपणचि विश्व जाहला। तरी भेदभावो सहजचि गेला। म्हणौनि द्वेषु ठेला। जया पुरुषा ॥१९१॥
पैं आपुलें जें साचें। तें कल्पांतींहीं न वचे। हें जाणोनि गताचें। न शोची जो ॥१९२॥
आणि जयापरौतें कांहीं नाहीं। तें आपणपेंचि आपुल्या ठायीं। जाहला यालागीं जो कांहीं। आकांक्षी ना ॥१९३॥
वोखटें कां गोमटें। हें काहींचि तया नुमटे। रात्रिदिवस न घटे। सूर्यासि जेवीं ॥१९४॥
ऐसा बोधुचि केवळु। जो होवोनि असे निखळु। त्याहीवरी भजनशीळु। माझ्या ठायीं ॥१९५॥
तरी तया ऐसें दुसरें। आम्हां पढियंतें सोयरें। नाहीं गा साचोकारें। तुझी आण ॥१९६॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथामानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८॥

पार्था जयाचिया ठायीं। वैषम्याची वार्ता नाहीं। रिपुमित्रां दोहीं। सरिसा पाडु ॥१९७॥
कां घरींचियां उजियेडु करावा। पारखियां आंधारु पाडावा। हें नेणेचि गा पांडवा। दीपु जैसा ॥१९८॥
जो खांडावया घावो घाली। कां लावणी जयानें केली। दोघां एकचि साउली। वृक्षु दे जैसा ॥१९९॥
नातरी इक्षुदंडु। पाळितया गोडु। गाळितया कडु। नोहेंचि जेवीं ॥२००॥
अरिमित्रीं तैसा। अर्जुना जया भावो ऐसा। मानापमानीं सरिसा। होतु जाये ॥२०१॥
तिहीं ऋतूं समान। जैसें कां गगन। तैसा एकचि मान। शीतोष्णीं जया ॥२०२॥
दक्षिण उत्तर मारुता। मेरु जैसा पंडुसुता। तैसा सुखदुःखप्राप्तां। मध्यस्थु जो ॥२०३॥
माधुर्यें चंद्रिका। सरिसी राया रंका। तैसा जो सकळिकां। भूतां समु ॥२०४॥

आघवियां जगा एक। सेव्य जैसें उदक। तैसें जयातें तिन्ही लोक। आकांक्षिती ॥ २०५॥
जो सबाह्यसंग। सांडोनिया लाग। एकाकीं असे आंग। आंगीं सूनी ॥ २०६॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ १९॥

जो निंदेतें नेघे। स्तुति न श्लाघे। आकाशा न लगे। लेपु जैसा ॥ २०७॥
तैसें निंदे आणि स्तुति। मानु करूनि एके पांती। विचरे प्राणवृत्ती। जनीं वनीं ॥ २०८॥
साच लटिकें दोन्ही। बोलोनि न बोले जाह्ला मौनी। जो भोगितां उन्मनी। आरायेना ॥ २०९॥
जो यथालाभें न तोखे। अलाभें न पारुखे। पाउसेवीण न सुके। समुद्र जैसा ॥ २१०॥
आणि वायूसि एके ठायीं। बिढार जैसें नाहीं। तैसा न धरीच कहीं। आश्रयो जो ॥ २११॥
आघवाची आकाशस्थिति। जेवीं वायूसि नित्य वसती। तेवीं जगचि विश्रांती- ।स्थान जया ॥ २१२॥
हें विश्वचि माझें घर। ऐसी मती जयाची स्थिर। किंबहुना चराचर। आपण जाह्ला ॥ २१३॥
मग याहीवरी पार्था। माझ्या भजनीं आस्था। तरी तयातें मी माथां। मुकुट करीं ॥ २१४॥
उत्तमासि मस्तक। खालविजे हें काय कौतुक। परी मानु करिती तिन्ही लोक। पायवणियां ॥ २१५॥
तरी श्रद्धावस्तूसी आदरु। करितां जाणिजे प्रकारु। जरी होय श्रीगुरु। सदाशिवु ॥ २१६॥
परी हे असो आतां। महेशातें वानितां। आत्मस्तुति होतां। संचारु असे ॥ २१७॥
ययालागीं हें नोहे। म्हणितलें रमानाहें। अर्जुना मी वाहें। शिरीं तयातें ॥ २१८॥
जे पुरुषार्थसिद्धि चौथी। घेऊनि आपुलिया हातीं। रिगाला भक्तिपंथीं। जगा देतु ॥ २१९॥
कैवल्याचा अधिकारी। मोक्षाची सोडी बांधी करी। कीं जळाचिये परी। तळवटु घे ॥ २२०॥
म्हणौनि गा नमस्कारूं। तयातें आम्ही माथां मुगुट करूं। तयाची टांच धरूं। हृदयीं आम्हीं ॥ २२१॥
तयाचिया गुणांचीं लेणीं। लेववूं अपुलिये वाणी। तयाची कीर्ति श्रवणीं। आम्हीं लेवूं ॥ २२२॥
तो पहावा हे डोहळे। म्हणौनि अचक्षूसी मज डोळे। हातींचेनि लीलाकमळें। पुजूं तयातें ॥ २२३॥
दोंवरी दोनी। भुजा आलों घेउनि। आलिंगावयालागुनी। तयाचें आंग ॥ २२४॥
तया संगाचेनि सुरवाडें। मज विदेहा देह धरणें घडे। किंबहुना आवडे। निरुपमु ॥ २२५॥
तेणेंसीं आम्हां मैत्र। एथ कायसें विचित्र ?। परी तयाचें चरित्र। ऐकती जे ॥ २२६॥
तेही प्राणापरौते। आवडती हें निरुतें। जे भक्तचरित्रातें। प्रशंसिती ॥ २२७॥
जो हा अर्जुना साद्यंत। सांगितला प्रस्तुत। भक्तियोगु समस्त-। योगरूप ॥ २२८॥
तया मी प्रीति करी। कां मनीं शिरसा धरीं। येवढी थोरी। जया स्थितीये ॥ २२९॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव प्रियाः ॥ २०॥

इति श्रीमद्भग्वद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२अ ॥

ते हे गोष्टी रम्य। अमृतधारा धर्म्य। करिती प्रतीतिगम्य। आइकोनि जे ॥ २३०॥
तेसीचि श्रद्धेचेनि आदरें। जयांचे ठायीं विस्तरे। जीवीं जयां थारे। जे अनुष्ठिती ॥ २३१॥
परी निरूपली जैसी। तैसीच स्थिति मानसीं। मग सुक्षेत्रीं जैसी। पेरणी केली ॥ २३२॥
परी मातें परम करूनि। इयें अर्थी प्रेम धरूनि। हेंचि सर्वस्व मानूनि। घेती जे पैं ॥ २३३॥
पार्था गा जगीं। तेचि भक्त तेचि योगी। उत्कंठा तयांलागीं। अखंड मज ॥ २३४॥
तें तीर्थ तें क्षेत्र। जगीं तेंचि पवित्र। भक्ति कथेसि मैत्र। जयां पुरुषां ॥ २३५॥
आम्हीं तयांचें करूं ध्यान। ते आमुचें देवतार्चन। ते वांचूनि आन। गोमटें नाहीं ॥ २३६॥
तयांचें आम्हां व्यसन। ते आमुचें निधिनिधान। किंबहुना समाधान। ते मिळती तैं ॥ २३७॥
पैं प्रेमळाची वार्ता। जे अनुवादती पंडुसुता। ते मानूं परमदेवता। आपुली आम्ही ॥ २३८॥
ऐसे निजजनानंदें। तेणें जगदादिकंदें। बोलिलें मुकुंदें। संजयो म्हणे ॥ २३९॥
राया जो निर्मळु। निष्कलंक लोककृपाळु। शरणागतां प्रतिपाळु। शरण्यु जो ॥ २४०॥
पैं सुरसहायशीळु। लोकलालनलीळु। प्रणतप्रतिपाळु। हा खेळु जयाचा ॥ २४१॥
जो धर्मकीर्तिधवलु। आगाध दातृत्वें सरळु। अतुळबळें प्रबळु। बळिबंधनु ॥ २४२॥
जो भक्तजनवत्सळु। प्रेमळजन प्रांजळु। सत्यसेतु सकळु। कलानिधी ॥ २४३॥
तो श्रीकृष्ण वैकुंठींचा। चक्रवर्ती निजांचा। सांगे येरु दैवाचा। आइकतु असे ॥ २४४॥
आतां ययावरी। निरूपिती परी। संजयो म्हणे अवधारीं। धृतराष्ट्रातें ॥ २४५॥
तेचि रसाळ कथा। मऱ्हाठिया प्रतिपथा। आणिजेल आतां। आवधारिजो ॥ २४६॥
ज्ञानदेव म्हणे तुम्ही। संत वोळगावेंति आम्ही। हें पढविलों जी स्वामी। निवृत्तिदेवीं ॥ २४७॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां द्वादशोऽध्यायः ॥

Encoded and proofread by
Chhaya Deo, Sharad Deo, and Vishwas Bhide.
Assisted by
Sunder Hattangadi, Joshi, and Shree Devi Kumar.
